5 जब जनता बग़ावत करती है 1857 और उसके बाद

0865CH05

चित्र 1 - सिपाही और किसान विद्रोह के लिए ताकत जुटाते हुए। यह विद्रोह 1857 में उत्तर भारत के मैदानों में फैल गया था।

नीतियाँ और लोग

पिछले अध्यायों में आपने ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों और जनता पर उसके प्रभावों के बारे में पढ़ा। इन नीतियों से राजाओं, रानियों, किसानों, ज़मींदारों, आदिवासियों, सिपाहियों, सब पर तरह-तरह से असर पड़े। आप यह भी देख चुके हैं कि जो नीतियाँ और कार्रवाईयाँ जनता के हित में नहीं होतीं या जो उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाती हैं उनका लोग किस तरह विरोध करते हैं।

नवाबों की छिनती सत्ता

अठारहवीं सदी के मध्य से ही राजाओं और नवाबों की ताकत छिनने लगी थी। उनकी सत्ता और सम्मान, दोनों ख़त्म होते जा रहे थे। बहुत सारे दरबारों में रेज़िडेंट तैनात कर दिए गए थे। स्थानीय शासकों की स्वतंत्रता घटती जा रही थी। उनकी सेनाओं को भंग कर दिया गया था। उनके राजस्व वसूली के अधिकार व इलाके एक-एक करके छीने जा रहे थे।

बहुत सारे स्थानीय शासकों ने अपने हितों की रक्षा के लिए कंपनी के साथ बातचीत भी की। उदाहरण के लिए, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई चाहती थीं कि कंपनी उनके पति की मृत्यु के बाद उनके गोद लिए हुए बेटे को राजा मान ले।

© not to be republished

पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहेब ने भी कंपनी से आग्रह किया कि उनके पिता को जो पेंशन मिलती थी वह मृत्यु के बाद उन्हें मिलने लगे। अपनी श्रेष्ठता और सैनिक ताकत के नशे में चूर कंपनी ने इन निवेदनों को ठुकरा दिया।

अवध की रियासत अंग्रेज़ों के कब्ज़े में जाने वाली आख़िरी रियासतों में से थी। 1801 में अवध पर एक सहायक संधि थोपी गयी और 1856 में अंग्रेज़ों ने उसे अपने कब्ज़े में ले लिया। गवर्नर-जनरल डलहौज़ी ने ऐलान कर दिया कि रियासत का शासन ठीक से नहीं चलाया जा रहा है इसलिए शासन को दुरुस्त करने के लिए ब्रिटिश प्रभुत्व ज़रूरी है।

कंपनी ने मुग़लों के शासन को ख़त्म करने की भी पूरी योजना बना ली थी। कंपनी द्वारा जारी किए गए सिक्कों पर से मुग़ल बादशाह का नाम हटा दिया गया। 1849 में गवर्नर-जनरल डलहौज़ी ने ऐलान किया कि बहादुर शाह ज़फ़र की मृत्यु के बाद बादशाह के परिवार को लाल किले से निकाल कर उसे दिल्ली में कहीं और बसाया जाएगा। 1856 में गवर्नर-जनरल कैनिंग ने फ़ैसला किया कि बहादुर शाह ज़फ़र आख़िरी मुग़ल बादशाह होंगे। उनकी मृत्यु के बाद उनके किसी भी वंशज को बादशाह नहीं माना जाएगा। उन्हें केवल राजकुमारों के रूप में मान्यता दी जाएगी।

किसान और सिपाही

गाँवों में किसान और ज़मींदार भारी-भरकम लगान और कर वसूली के सख्त तौर-तरीकों से परेशान थे। बहुत सारे लोग महाजनों से लिया कर्ज़ नहीं लौटा पा रहे थे। इसके कारण उनकी पीढ़ियों पुरानी ज़मीनें हाथ से निकलती जा रही थीं।

कंपनी के तहत काम करने वाले भारतीय सिपाहियों के असंतोष की अपनी वजह थी। वे अपने वेतन, भत्तों और सेवा शर्तों के कारण परेशान थे। कई नए नियम उनकी धार्मिक भावनाओं और आस्थाओं को ठेस पहुँचाते थे। क्या आप जानते हैं कि उस ज़माने में बहुत सारे लोग समुद्र पार नहीं जाना चाहते थे। उन्हें लगता था कि समुद्र यात्रा से उनका धर्म और जाति भ्रष्ट हो जाएँगे। जब 1824 में सिपाहियों को कंपनी की ओर से लड़ने के लिए समुद्र के रास्ते बर्मा जाने का आदेश मिला तो उन्होंने इस हुक्म को मानने से इनकार कर दिया। उन्हें ज़मीन के रास्ते से जाने में ऐतराज़ नहीं था। सरकार का हुक्म न मानने के कारण उन्हें सख्त सज़ा दी गई। क्योंकि यह मुद्दा अभी ख़त्म नहीं हुआ था इसलिए 1856 में कंपनी को एक नया कानून बनाना पड़ा। इस कानून में साफ़ कहा गया था कि अगर कोई व्यक्ति कंपनी की सेना में नौकरी करेगा तो ज़रूरत पड़ने पर उसे समुद्र पार भी जाना पड़ सकता है।

सिपाही गाँवों के हालात से भी परेशान थे। बहुत सारे सिपाही खुद किसान थे। वे अपने परिवार गाँवों में छोड़कर आए थे। लिहाज़ा, किसानों का गुस्सा जल्दी ही सिपाहियों में भी फैल गया।

गतिविधि

कल्पना कीजिए कि आप कंपनी की सेना में सिपाही हैं। आप नहीं चाहते कि आपका भतीजा कंपनी की फौज़ में नौकरी करे। आप उसे क्या कारण बताएँगे?

© NCERT not to be republished

Reprint 2024-25

चित्र 2 - *उत्तर भारत के बाज़ारों में सिपाही खबरें और अफ़वाहें फैलाते हुए।*

सुधारों पर प्रतिक्रिया

अंग्रेज़ों को लगता था कि भारतीय समाज को सुधारना ज़रूरी है। सती प्रथा को रोकने और विधवा विवाह को बढ़ावा देने के लिए कानून बनाए गए। अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा को जमकर प्रोत्साहन दिया गया। 1830 के बाद कंपनी ने ईसाई मिशनरियों को खुलकर काम करने और यहाँ तक कि ज़मीन व संपत्ति जुटाने की भी छूट दे दी। 1850 में एक नया कानून बनाया गया जिससे ईसाई धर्म को अपनाना और आसान हो गया। इस कानून में प्रावधान किया गया था कि अगर कोई भारतीय व्यक्ति ईसाई धर्म अपनाता है तो भी पुरखों की संपत्ति पर उसका अधिकार पहले जैसा ही रहेगा। बहुत सारे भारतीयों को यकीन हो गया था कि अंग्रेज़ उनका धर्म, उनके सामाजिक रीति-रिवाज़ और परंपरागत जीवनशैली को नष्ट कर रहे हैं।

दूसरी तरफ़ ऐसे भारतीय भी थे जो मौजूदा सामाजिक व्यवस्था में बदलाव चाहते थे। इन सुधारकों और उनके सुधार आंदोलनों के बारे में आप अध्याय 6 में पढ़ेंगे।

जनता की नज़र से

उस ज़माने में लोग अंग्रेज़ शासन के बारे में क्या सोच रहे थे, इसका जायज़ा लेने के लिए आप स्रोत 1 और 2 को पढ़ें।

स्रोत 1

चौरासी नियमों की सूची

यहाँ महाराष्ट्र के एक गाँव में रहने वाले ब्राह्मण विष्णुभट्ट गोडसे द्वारा लिखित पुस्तक *माझा प्रवास* के कुछ अंश दिए गए हैं। विष्णुभट्ट और उनके चाचा मथुरा में आयोजित किए जा रहे एक यज्ञ में भाग लेने के लिए निकले थे। विष्णुभट्ट लिखते हैं कि रास्ते में उनकी मुलाकात कुछ सिपाहियों से हुई जिन्होंने उन्हें सलाह दी कि वे वापस लौट जाएँ क्यों कि तीन दिन के भीतर चारों तरफ़ कोहराम मच जाएगा। सिपाहियों ने जो कहा वह इस प्रकार था—

> अंग्रेज़ सरकार हिंदुओं और मुसलमानों के धर्म को नष्ट करने पर आमादा है... उन्होंने चौरासी नियमों की एक सूची बनाई है और कलकत्ता में सारे राजाओं और राजकुमारों की मौजूदगी में उसका ऐलान कर दिया है। उन्होंने (सिपाहियों ने) बताया कि राजा इन नियमों को मानने के लिए तैयार नहीं है। उन्होंने अंग्रेज़ों को घातक परिणामों की चेतावनी दी है। राजाओं ने कहा है कि अगर ये नियम लागू किए गए तो भारी उथल-पुथल मच जाएगी... कि राजा भारी गुस्से में अपनी राजधानियों को लौट गए हैं... तमाम बड़े लोग योजनाएँ बना रहे हैं। धर्मयुद्ध के लिए तारीख़ तय कर ली गई थी और मेरठ छावनी से एक गुप्त योजना तैयार करके विभिन्न छावनियों में भेज दी गई थी।

विष्णुभट्ट गोडसे, माझा प्रवास पृष्ठ 23–24.

Reprint 2024-25

स्रोत 2

"जल्दी ही हर टुकड़ी में उत्तेजना छा गई"

उस दौर की एक और झलक सूबेदार सीताराम पांडे के संस्मरणों में मिलती है। सीताराम पांडे को 1812 में बंगाल नेटिव आर्मी में सिपाही के तौर पर भर्ती किया गया था। उन्होंने 48 साल तक नौकरी की और 1860 में वे सेवानिवृत्त हुए। उन्होंने बग़ावत को दबाने में अंग्रेज़ों की मदद की हालाँकि उनका बेटा भी विद्रोहियों के साथ था और अंग्रेज़ों ने उसे सीताराम की आँखों के सामने ही मार डाला था। अपने सेवानिवृत्ति के बाद उनके कमान अफ़सर नॉरगेट ने उन्हें अपने संस्मरण लिखने के लिए प्रेरित किया। सीताराम ने 1861 में अवधी भाषा में अपने संस्मरण लिखे जिनका नॉरगेट ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया और *फ्रॉम सिपॉय टू सूबेदार (सिपाही से सूबेदार तक)* के नाम से प्रकाशित करवाया। सीताराम पांडे के संस्मरणों का एक अंश इस प्रकार था—

> मेरा मानना है कि अवध पर हुए कब्ज़े से सिपाहियों के भीतर गहरा अविश्वास भर गया था और वे सरकार के खिलाफ़ साज़िशें रचने लगे थे। अवध के नवाब और दिल्ली बादशाह के नुमाइंदों को सेना की नब्ज़ जानने के लिए पूरे भारत में भेज दिया गया। उन्होंने सिपाहियों की भावनाओं को और हवा दी। उन्होंने सिपाहियों को बताया कि विदेशियों ने बादशाह के साथ कितना बड़ा धोखा किया है। उन्होंने हज़ार झूठ गढ़ डाले और सिपाहियों को अपने मालिकों, अंग्रेज़ों के खिलाफ़ बग़ावत करने के लिए उकसाया ताकि दिल्ली में बादशाह को दोबारा गद्दी पर बैठाया जा सके। उनकी दलील थी कि अगर सिपाही मिलकर काम करें और इन सुझावों पर अमल करें तो सेना ऐसा कर सकती है।

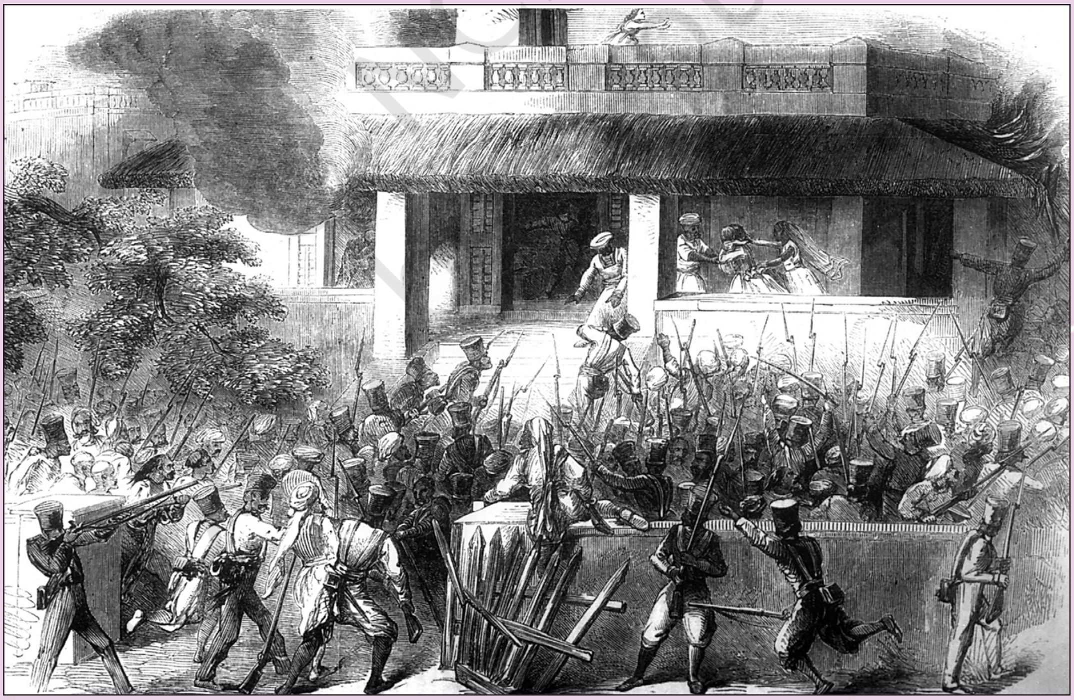

***चित्र 3** - मेरठ में विद्रोही सिपाही अफ़सरों पर हमला करते हैं, उनके घरों में घुस जाते हैं और इमारतों में आग लगा देते हैं।*

स्रोत 2 जारी...

Reprint 2024-25

गतिविधि

1. सीताराम और विष्णुभट्ट के मुताबिक लोगों के दिमाग में मुख्य चिंताएँ कौन-सी थीं?
2. उनकी राय में शासकों ने क्या भूमिका निभाई? सिपाही क्या भूमिका निभाते दिखाई दे रहे थे?

स्रोत 2 का शेष...

संयोग से इसी समय सरकार ने हरेक रेजिमेंट के कुछ लोगों को नयी राइफल के इस्तेमाल का तरीका बताने के लिए अलग-अलग छावनियों में भेजा। इन लोगों ने कुछ समय तक सिपाहियों को प्रशिक्षण दिया। इसी दौरान न जाने कहाँ से यह ख़बर फैल गई कि इन राइफ़लों में इस्तेमाल होने वाले कारतूसों पर गाय और सुअर की चर्बी का लेप चढ़ाया गया है। हमारी रेजिमेंट के लोग दूसरे लोगों को लिखकर यह ख़बर भेजने लगे और जल्दी ही हरेक रेजिमेंट में उत्तेजना का माहौल बन गया। कुछ लोगों ने कहा कि उनकी चालीस साल की नौकरी में सरकार ने उनके मज़हब को चोट पहुँचाने के लिए कभी कुछ नहीं किया था। लेकिन जैसा कि मैंने पहले ही ज़िक्र किया, अवध पर कब्ज़े के कारण सिपाही पहले ही गुस्से में थे। स्वार्थी लोगों ने फ़ौरन यह कहानी गढ़ दी कि अंग्रेज़ तो सबको ईसाई बनाना चाहते हैं इसीलिए उन्होंने ऐसे कारतूस तैयार किए हैं ताकि उन्हें इस्तेमाल करने से मुसलमान और हिंदू दोनों ही भ्रष्ट हो जाएँ।

कर्नल साहब का मानना था कि यह बेचैनी, जो उन्हें भी साफ़ दिखाई दे रही थी, इस बार भी अपने आप ख़त्म हो जाएगी और उन्होंने मुझे घर चले जाने की हिदायत दी।

सीताराम पाँडे, फ़्रॉम सिपॉय टू सूबेदार, पृष्ठ 162–163

© NCERT not to be republished

सैनिक विद्रोह जनविद्रोह बन गया

सैनिक विद्रोह - जब सिपाही इकट्ठा होकर अपने सैनिक अफ़सरों का हुक्म मानने से इनकार कर देते हैं।

यद्यपि शासक और प्रजा के बीच संघर्ष कोई अनोखी बात नहीं होती लेकिन कभी-कभी ये संघर्ष इतने फैल जाते हैं कि राज्य की सत्ता छिन्न-भिन्न हो जाती है। बहुत सारे लोग मानने लगे हैं कि उन सबका शत्रु एक है। इसलिए वे सभी कुछ करना चाहते हैं। इस तरह की स्थिति में हालात अपने हाथ में लेने के लिए लोगों को संगठित होना पड़ता है, उन्हें संचार, पहलक़दमी और आत्मविश्वास का परिचय देना होता है।

भारत के उत्तरी भागों में 1857 में ऐसी ही स्थिति पैदा हो गई थी। फ़तह और शासन के 100 साल बाद ईस्ट इंडिया कंपनी को एक भारी विद्रोह से जूझना पड़ रहा था। मई 1857 में शुरू हुई इस बग़ावत ने भारत में कंपनी का अस्तित्व ही खतरे में डाल दिया था। मेरठ से शुरू करके सिपाहियों ने कई जगह बग़ावत की। समाज के विभिन्न तबकों के असंख्य लोग विद्रोही तेवरों के साथ उठ खड़े हुए। कुछ लोग मानते हैं कि उन्नीसवीं सदी में उपनिवेशवाद के खिलाफ़ दुनिया भर में यह सबसे बड़ा सशस्त्र संघर्ष था।

Reprint 2024-25

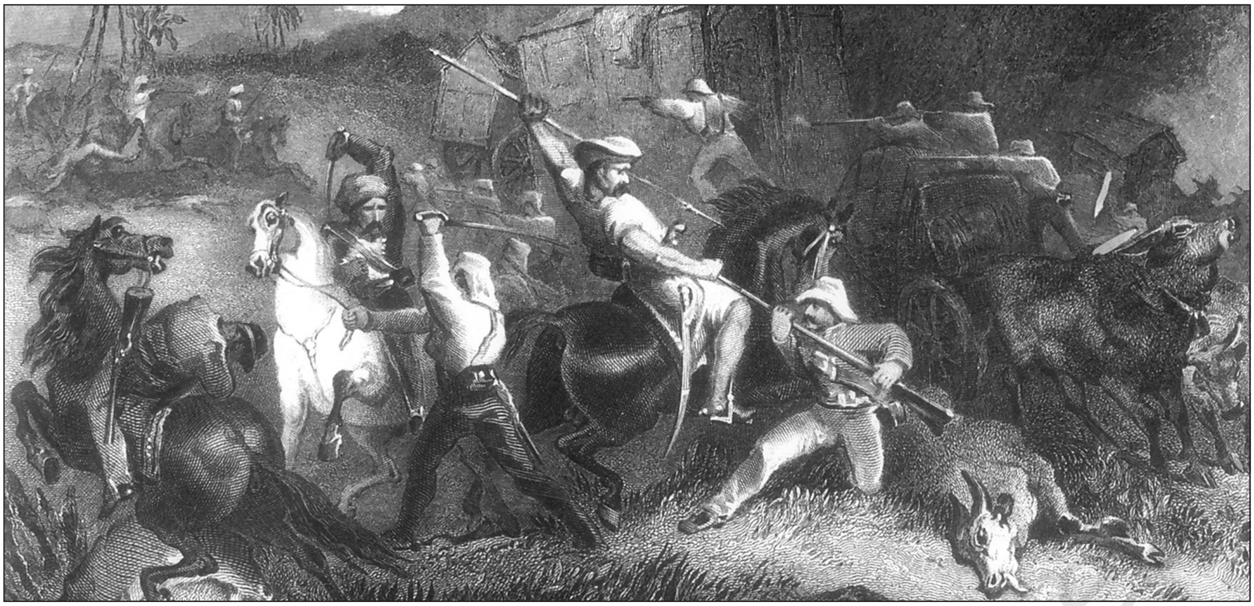

मेरठ से दिल्ली तक

8 अप्रैल 1857 को युवा सिपाही – मंगल पांडे – को बैरकपुर में अपने अफ़सरों पर हमला करने के आरोप में फाँसी पर लटका दिया गया। चंद दिन बाद मेरठ में तैनात कुछ सिपाहियों ने नए कारतूसों के साथ फ़ौजी अभ्यास करने से इनकार कर दिया। सिपाहियों को लगता था कि उन कारतूसों पर गाय और सूअर की चर्बी का लेप चढ़ाया गया था। 85 सिपाहियों को नौकरी से निकाल दिया गया। उन्हें अपने अफ़सरों का हुक्म न मानने के आरोप में 10–10 साल की सज़ा दी गई। यह 9 मई 1857 की बात है।

मेरठ में तैनात दूसरे भारतीय सिपाहियों की प्रतिक्रिया बहुत ज़बरदस्त रही। 10 मई को सिपाहियों ने मेरठ की जेल पर धावा बोलकर वहाँ बंद सिपाहियों को आज़ाद करा लिया। उन्होंने अंग्रेज़ अफ़सरों पर हमला करके उन्हें मार गिराया। उन्होंने बंदूक और हथियार कब्ज़े में ले लिए और अंग्रेज़ों की इमारतों व संपत्तियों को आग के हवाले कर दिया। उन्होंने **फ़िरंगियों** के खिलाफ़ युद्ध का ऐलान कर दिया। सिपाही पूरे देश में अंग्रेज़ों के शासन को ख़त्म करने पर आमादा थे। लेकिन सवाल यह था कि अंग्रेज़ों के जाने के बाद देश का शासन कौन चलाएगा। सिपाहियों ने इसका भी जवाब ढूँढ़ लिया था। वे मुग़ल सम्राट बहादुर शाह ज़फ़र को देश का शासन सौंपना चाहते थे।

मेरठ के कुछ सिपाहियों की एक टोली 10 मई की रात को घोड़ों पर सवार होकर मुँह अँधेरे ही दिल्ली पहुँच गई। जैसे ही उनके आने की ख़बर फैली, दिल्ली में तैनात टुकड़ियों ने भी बग़ावत कर दी। यहाँ भी अंग्रेज़ अफ़सर मारे गए। देशी सिपाहियों ने हथियार व गोला बारूद कब्ज़े में ले लिया और इमारतों को आग लगा दी। विजयी सिपाही लाल किले की दीवारों के आसपास जमा हो गए। वे बादशाह से मिलना चाहते थे। बादशाह अंग्रेज़ों की भारी ताकत से दो-दो हाथ

चित्र 4 *- कैवेलरी लाइनों में युद्ध।*
3 जुलाई 1857 को 3,000 से ज़्यादा विद्रोही बरेली से दिल्ली आ पहुँचे। उन्होंने यमुना को पार किया और ब्रिटिश कैवेलरी चौकियों पर धावा बोल दिया। यह युद्ध पूरी रात चलता रहा।

चित्र 5 *- मंगल पांडे की स्मृति में जारी डाक टिकट*

फ़िरंगी - विदेशी। इस शब्द में अपमान का भाव आता है।

Reprint 2024-25

करने को तैयार नहीं थे लेकिन सिपाही भी अड़े रहे। आख़िरकार वे जबरन महल में घुस गए और उन्होंने बहादुर शाह ज़फ़र को अपना नेता घोषित कर दिया।

बूढ़े बादशाह को सिपाहियों की यह माँग माननी पड़ी। उन्होंने देश भर के मुखियाओं और शासकों को चिट्ठी लिखकर अंग्रेज़ों से लड़ने के लिए भारतीय राज्यों का एक संघ बनाने का आह्वान किया। बहादुर शाह के इस एकमात्र कदम के गहरे परिणाम सामने आए।

अंग्रेज़ों से पहले देश के एक बहुत बड़े हिस्से पर मुग़ल साम्राज्य का ही शासन था। ज़्यादातर छोटे शासक और रजवाड़े मुग़ल बादशाह के नाम पर ही अपने इलाकों का शासन चलाते थे। ब्रिटिश शासन के विस्तार से भयभीत ऐसे बहुत सारे शासकों को लगता था कि अगर मुग़ल बादशाह दोबारा शासन स्थापित कर लें तो वे मुग़ल आधिपत्य में दोबारा अपने इलाकों का शासन बेफ़िक्र होकर चलाने लगेंगे।

अंग्रेज़ों को इन घटनाओं की उम्मीद नहीं थी। उन्हें लगता था कि कारतूसों के मुद्दे पर पैदा हुई उथल-पुथल कुछ समय में शांत हो जाएगी। लेकिन जब बहादुर शाह ज़फ़र ने बग़ावत को अपना समर्थन दे दिया तो स्थिति रातोंरात बदल गई। अकसर ऐसा होता है कि जब लोगों को कोई रास्ता दिखाई देने लगता है तो उनका उत्साह और साहस बढ़ जाता है। इससे उन्हें आगे बढ़ने की हिम्मत, उम्मीद और आत्मविश्वास मिलता है।

चित्र 6 - बहादुर शाह ज़फ़र

चित्र 7 - नाना साहेब

बग़ावत फैलने लगी

जब दिल्ली से अंग्रेज़ों के पैर उखड़ गए तो लगभग एक हफ़्ते तक कहीं कोई विद्रोह नहीं हुआ। ज़ाहिर है ख़बर फैलने में भी कुछ समय तो लगना ही था। लेकिन फिर तो विद्रोहों का सिलसिला ही शुरू हो गया।

एक के बाद एक, हर रेजिमेंट में सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया और वे दिल्ली, कानपुर व लखनऊ जैसे मुख्य बिंदुओं पर दूसरी टुकड़ियों का साथ देने को निकल पड़े। उनकी देखा-देखी कस्बों और गाँवों के लोग भी बग़ावत के रास्ते पर चलने लगे। वे स्थानीय नेताओं, ज़मींदारों और मुखियाओं के पीछे संगठित हो गए। ये लोग अपनी सत्ता स्थापित करने और अंग्रेज़ों से लोहा लेने को तैयार थे। स्वर्गीय पेशवा बाजीराव के दत्तक पुत्र नाना साहेब कानपुर के पास रहते थे। उन्होंने सेना इकट्ठा की और ब्रिटिश सैनिकों को शहर से खदेड़ दिया। उन्होंने खुद को पेशवा घोषित कर दिया। उन्होंने ऐलान किया कि वह बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के तहत गवर्नर हैं। लखनऊ की गद्दी से हटा दिए गए नवाब वाजिद अली शाह के बेटे बिरजिस क़द्र को नया नवाब घोषित कर दिया गया। बिरजिस क़द्र ने भी बहादुर शाह

चित्र 8 - जैसे-जैसे विद्रोह फैला, छावनियों में अंग्रेज़ अफ़सरों को मारा जाने लगा।

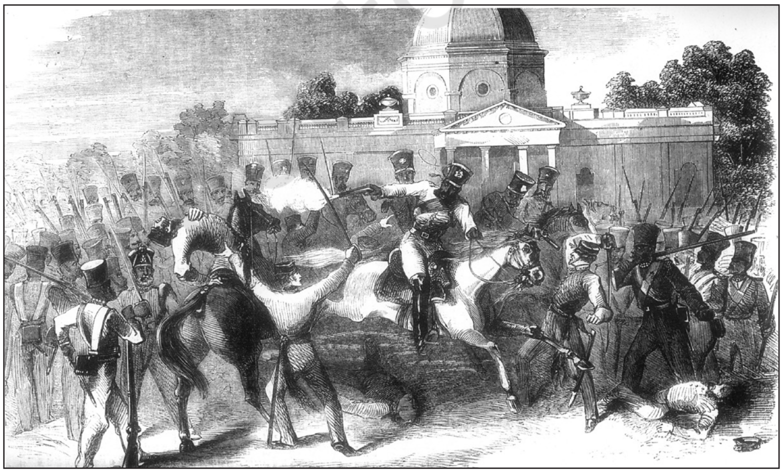

Reprint 2024-25

ज़फ़र को अपना बादशाह मान लिया। उनकी माँ बेगम हज़रत महल ने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ विद्रोहों को बढ़ावा देने में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई भी विद्रोही सिपाहियों के साथ जा मिलीं। उन्होंने नाना साहेब के सेनापति ताँत्या टोपे के साथ मिलकर अंग्रेज़ों को भारी चुनौती दी। मध्य प्रदेश के मांडला क्षेत्र में, राजगढ़ की राजी अवन्ति बाई लोधी ने 4,000 सैनिकों की फौज़ तैयार की और अंग्रेज़ों के खिलाफ़ उसका नेतृत्व किया क्योंकि ब्रिटिश शासन ने उनके राज्य के प्रशासन पर नियंत्रण कर लिया था।

विद्रोही टुकड़ियों के सामने अंग्रेज़ों की संख्या बहुत कम थी। बहुत सारे मोर्चों पर उनकी ज़बरदस्त हार हुई। इससे लोगों को यक़ीन हो गया कि अब अंग्रेज़ों का शासन ख़त्म हो चुका है। अब लोगों को विद्रोहों में कूद पड़ने का गहरा आत्मविश्वास मिल गया था। ख़ासतौर से अवध के इलाके में चौतरफ़ा बग़ावत की स्थिति थी। 6 अगस्त 1857 को लेफ़्टिनेंट कर्नल टाइटलर ने अपने कमांडर-इन-चीफ़ को टेलीग्राम भेजा जिसमें उसने अंग्रेज़ों के भय को व्यक्त किया था— "हमारे लोग विरोधियों की संख्या और लगातार लड़ाई से थक गए हैं। एक-एक गाँव हमारे खिलाफ़ है। ज़मींदार भी हमारे खिलाफ़ खड़े हो रहे हैं।"

इस दौरान बहुत सारे महत्त्वपूर्ण नेता सामने आए। उदाहरण के लिए, फ़ैज़ाबाद के मौलवी अहमदुल्ला शाह ने भविष्यवाणी कर दी कि अंग्रेज़ों का शासन जल्दी ही ख़त्म हो जाएगा। वह समझ चुके थे कि जनता क्या चाहती है। इसी आधार पर उन्होंने अपने समर्थकों की एक विशाल संख्या जुटा ली। अपने समर्थकों के साथ वे भी अंग्रेज़ों से लड़ने लखनऊ जा पहुँचे। दिल्ली में अंग्रेज़ों का सफ़ाया करने के लिए बहुत सारे ग़ाज़ी यानी धर्मयोद्धा इकट्ठा हो गए थे। बरेली के सिपाही बख्त खान ने लड़ाकों की एक विशाल टुकड़ी के साथ दिल्ली की ओर कूच कर दिया। वह इस बग़ावत में एक मुख्य व्यक्ति साबित हुए। बिहार के एक पुराने ज़मींदार कुँवर सिंह ने भी विद्रोही सिपाहियों का साथ दिया और महीनों तक अंग्रेज़ों से लड़ाई लड़ी। तमाम इलाकों के नेता और लड़ाके इस युद्ध में हिस्सा ले रहे थे।

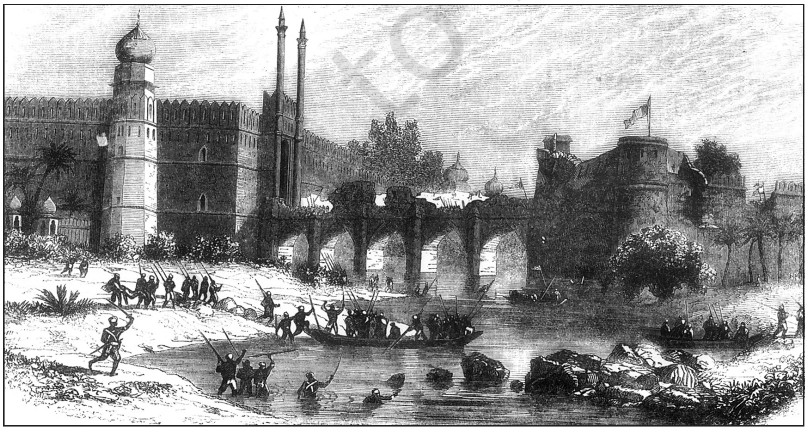

चित्र 11 - ब्रिटिश टुकड़ियाँ विद्रोहियों पर हमला करती हैं जिन्होंने दिल्ली के लाल किले (दाएँ) तथा सलीमगढ़ किले (बाएँ) पर कब्ज़ा किया हुआ था।

गतिविधि

1. मुग़ल सम्राट विद्रोहियों का समर्थन करने के लिए क्यों तैयार हुए?
2. सिपाहियों के प्रस्ताव को मानने से पहले उन्होंने हालात का जो हिसाब लगाया होगा उसके बारे में एक अनुच्छेद लिखें।

चित्र 9 - रानी लक्ष्मीबाई

चित्र 10 - वीर कुँवर सिंह

Reprint 2024-25

चित्र 12 - विद्रोही सिपाही मेरठ से दिल्ली की तरफ़ कूच करते हैं।

शुरू में, अंग्रेज़ी सेनाओं को दिल्ली की भारी किले-बंदी को तोड़ने में मुश्किल हुई। 3 सितंबर 1857 को अंग्रेज़ी सेनाओं को और ज़्यादा हथियार गोले आदि पहुँचाए गए। ये गाड़ियों पर लदे हुए थे जिन्हें हाथी खींच रहे थे और इनकी कतार 7 मील लंबी थी।

चित्र 13 - ताँत्या टोपे की स्मृति में जारी डाक टिकट

> **गतिविधि**
>
> उन स्थानों की सूची बनाएँ जहाँ 1857 के मई, जून और जुलाई महीनों में विद्रोह हुए।

कंपनी का पलटवार

इस उथल-पुथल के बावजूद अंग्रेज़ों ने हिम्मत नहीं छोड़ी। कंपनी ने अपनी पूरी ताकत लगाकर विद्रोह को कुचलने का फ़ैसला लिया। उन्होंने इंग्लैंड से और फ़ौजी मँगवाए, विद्रोहियों को जल्दी सज़ा देने के लिए नए कानून बनाए और विद्रोह के मुख्य केंद्रों पर धावा बोल दिया। सितंबर 1857 में दिल्ली दोबारा अंग्रेज़ों के कब्ज़े में आ गई। अंतिम मुग़ल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें आजीवन कारावास की सज़ा दी गई। उनके बेटों को उनकी आँखों के सामने गोली मार दी गई। बहादुर शाह और उनकी पत्नी बेगम ज़ीनत महल को अक्तूबर 1858 में रंगून जेल में भेज दिया गया। इसी जेल में नवंबर 1862 में बहादुर शाह ज़फ़र ने अंतिम साँस ली।

दिल्ली पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा हो जाने का यह मतलब नहीं था कि विद्रोह ख़त्म हो चुका था। इसके बाद भी लोग अंग्रेज़ों से टक्कर लेते रहे। व्यापक बग़ावत की विशाल ताकत को कुचलने के लिए अंग्रेज़ों को अगले दो साल तक लड़ाई लड़नी पड़ी।

मार्च 1858 में लखनऊ अंग्रेज़ों के कब्ज़े में चला गया। जून 1858 में रानी लक्ष्मीबाई की शिकस्त हुई और उन्हें मार दिया गया। दुर्भाग्यवश, ऐसा ही रानी अवन्ति बाई लोधी के साथ हुआ। खेड़ी की शुरुआती विजय के बाद उन्होंने अपने आप को अंग्रेज़ी फ़ौज से घिरा पाया और वे शहीद हो गईं।

ताँत्या टोपे मध्य भारत के जंगलों में रहते हुए आदिवासियों और किसानों की सहायता से छापामार युद्ध चलाते रहे।

जिस तरह पहले अंग्रेज़ों के खिलाफ़ मिली सफलताओं से विद्रोहियों को उत्साह मिला था उसी तरह विद्रोही ताकतों की हार से लोगों की हिम्मत टूटने लगी। बहुत सारे लोगों ने विद्रोहियों का साथ छोड़ दिया। अंग्रेज़ों ने भी लोगों का विश्वास जीतने के लिए हर संभव प्रयास किया। उन्होंने वफ़ादार भूस्वामियों

© NCERT not to be republished

Reprint 2024-25

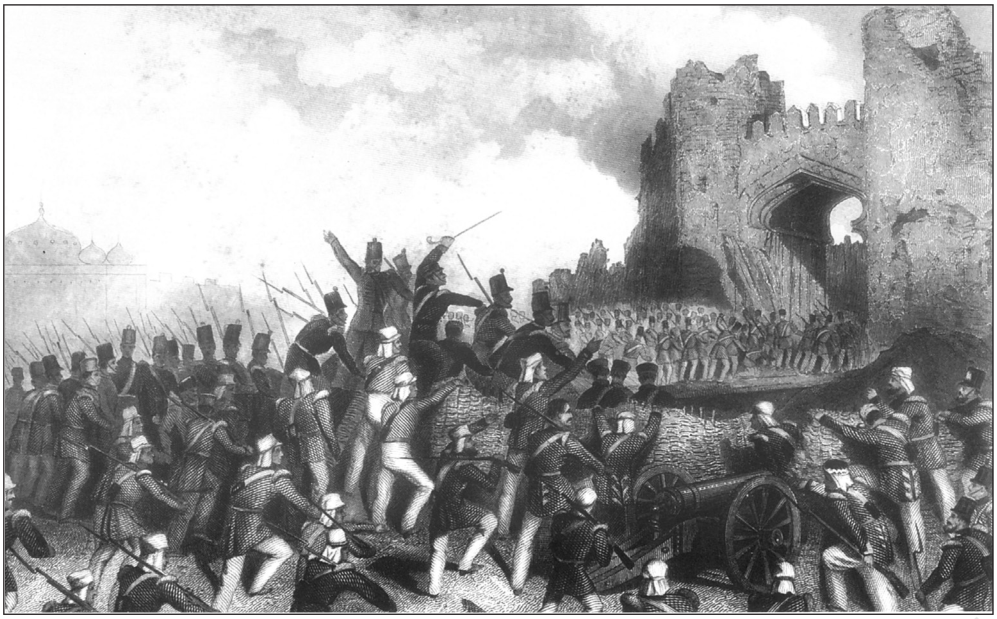

चित्र 14 - अंग्रेज़ टुकड़ियाँ दिल्ली में घुसने के लिए कश्मीरी गेट को बारूद से उड़ा देती हैं।

के लिए ईनामों का ऐलान कर दिया। उन्हें आश्वासन दिया गया कि उनकी ज़मीन पर उनके परंपरागत अधिकार बने रहेंगे। जिन्होंने विद्रोह किया था उनसे कहा गया कि अगर वे अंग्रेज़ों के सामने समर्पण कर देते हैं और अगर उन्होंने किसी अंग्रेज़ की हत्या नहीं की है तो वे सुरक्षित रहेंगे और ज़मीन पर उनके अधिकार और दावेदारी बनी रहेगी। इसके बावजूद सैकड़ों सिपाहियों, विद्रोहियों, नवाबों और राजाओं पर मुकदमे चलाए गए और उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया।

चित्र 15 - अंग्रेज़ टुकड़ियाँ कानपुर के पास विद्रोहियों को पकड़ लेती हैं।

ध्यान से देखें कि किस तरह कलाकार ने अंग्रेज़ सिपाहियों को बहादुरी से विद्रोहियों पर धावा बोलते हुए दिखाया है।

विद्रोह के बाद के साल

अंग्रेज़ों ने 1859 के आख़िर तक देश पर दोबारा नियंत्रण पा लिया था लेकिन अब वे पहले वाली नीतियों के सहारे शासन नहीं चला सकते थे।

अंग्रेज़ों ने जो अहम बदलाव किए वे निम्नलिखित हैं—

1. ब्रिटिश संसद ने 1858 में एक नया कानून पारित किया और ईस्ट इंडिया कंपनी के सारे अधिकार ब्रिटिश साम्राज्य के हाथ में सौंप दिए ताकि भारतीय मामलों को ज़्यादा बेहतर ढंग से सँभाला जा सके। ब्रिटिश मंत्रिमंडल के एक सदस्य को भारत मंत्री के रूप में नियुक्त किया गया। उसे भारत के शासन से संबंधित मामलों को सँभालने का ज़िम्मा सौंपा गया। उसे सलाह देने के लिए एक परिषद् का गठन किया गया जिसे इंडिया काउंसिल कहा जाता था। भारत के गवर्नर-जनरल को वायसराय का ओहदा दिया गया। इस प्रकार उसे इंगलैंड के राजा/रानी का निजी प्रतिनिधि घोषित कर दिया गया। फलस्वरूप, अंग्रेज़ सरकार ने भारत के शासन की ज़िम्मेदारी सीधे अपने हाथों में ले ली।

Reprint 2024-25

2. देश के सभी शासकों को भरोसा दिया गया कि भविष्य में कभी भी उनके भूक्षेत्र पर कब्ज़ा नहीं किया जाएगा। उन्हें अपनी रियासत अपने वंशजों, यहाँ तक कि दत्तक पुत्रों को सौंपने की छूट दे दी गई। लेकिन उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया गया कि वे ब्रिटेन की रानी को अपना अधिपति स्वीकार करें। इस तरह, भारतीय शासकों को ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन शासन चलाने की छूट दी गई।

3. सेना में भारतीय सिपाहियों का अनुपात कम करने और यूरोपीय सिपाहियों की संख्या बढ़ाने का फ़ैसला लिया गया। यह भी तय किया गया कि अवध, बिहार, मध्य भारत और दक्षिण भारत से सिपाहियों को भर्ती करने की बजाय अब गोरखा, सिखों और पठानों में से ज़्यादा सिपाही भर्ती किए जाएँगे।

4. मुसलमानों की ज़मीन और संपत्ति बड़े पैमाने पर ज़ब्त की गई। उन्हें संदेह व शत्रुता के भाव से देखा जाने लगा। अंग्रेज़ों को लगता था कि यह विद्रोह उन्होंने ही खड़ा किया था।

5. अंग्रेज़ों ने फ़ैसला किया कि वे भारत के लोगों के धर्म और सामाजिक रीति-रिवाज़ों का सम्मान करेंगे।

6. भूस्वामियों और ज़मींदारों की रक्षा करने तथा ज़मीन पर उनके अधिकारों को स्थायित्व देने के लिए नीतियाँ बनाई गईं।

इस प्रकार, 1857 के बाद इतिहास का एक नया चरण शुरू हुआ।

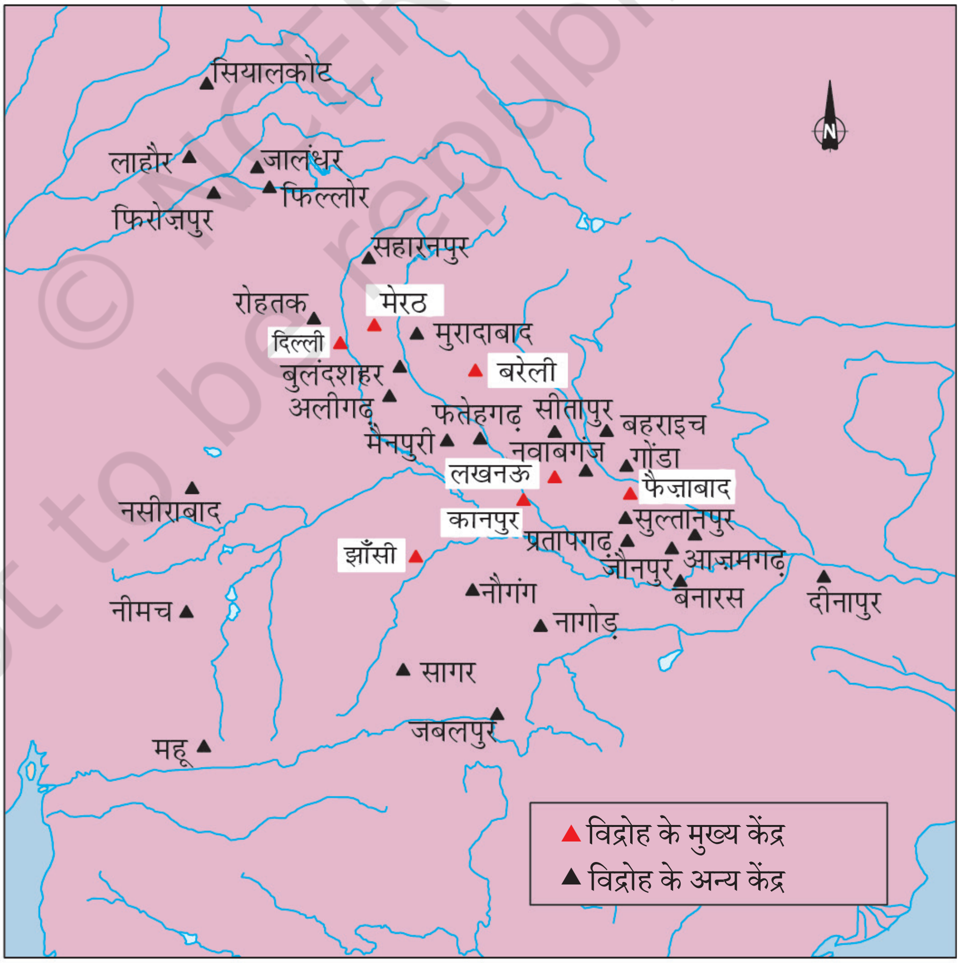

चित्र 16 - *उत्तरी भारत में विद्रोह के कुछ प्रमुख केंद्र।*

Reprint 2024-25

© NCERT not to be republished

"खुर्दा संग्राम - एक केस स्टडी"

1857 की घटना से बहुत पहले, उसी प्रकार की एक घटना सन् 1817 में खुर्दा नामक स्थान पर घटित हुई थी। हमारे लिए उस घटना का अध्ययन करना और इस बात पर विचार करना भी शिक्षाप्रद होगा कि कैसे अंग्रेज़ों की औपनिवेशिक नीतियों के खिलाफ़ 19वीं सदी की शुरुआत से ही देश के विभिन्न हिस्सों में असंतोष निर्मित होने लगा था।

खुर्दा, जो कि ओडिशा के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित एक छोटा राज्य था, वह 19वीं शताब्दी की शुरुआत में 105 गढ़ों, जिनमें 60 बड़े और 1109 छोटे गांव सम्मिलित थे, एक जनबहुल उपजाऊ क्षेत्र था। इसके शासक, राजा बीरकिशोर देव को स्व:अधिकृत चार परगनाओं को तथा जगन्नाथ मंदिर के संचालन अधिकार समेत 14 गढ़जातों के प्रशासनिक उत्तरदायित्व को पूर्व में दबाव में आकर मराठाओं को सौंप देना पड़ा था। उनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी, मुकुंद देव (द्वितीय) इस दुर्दशा से विचलित थे। अतः अंग्रेज़ों और मराठों के बीच जारी संघर्ष में अपने लिए एक मौका देखते हुए उन्होंने अपने खोए हुए क्षेत्रों तथा जगन्नाथ मंदिर की देखरेख से संबंधित अधिकारों की पुनः प्राप्ति हेतु अंग्रेज़ों के साथ सलाह मशवरा शुरू कर दिया था। परंतु 1803 में ओडिशा को अपने कब्ज़े में लेने के बाद अंग्रेज़ों ने उन्हें इन दोनों मुद्दों में से किसी पर भी सकारात्मक कार्यवाही करने की दिशा में कोई रुचि नहीं दिखाई। परिणामतः ओडिशा के दूसरे सामंत राजाओं के साथ मिलकर तथा मराठाओं के गुप्त समर्थन से उन्होंने जबरन अपने अधिकारों को लागू करने का प्रयास किया। इसकी वजह से उन्हें अपने पद से विस्थापित होना पड़ा तथा अंग्रेज़ों ने उनके राज्य को अपने में मिला लिया। सांत्वना के रूप में एक नियमित अनुदान के साथ, जो कि उनकी पूर्व भूसंपत्ति के राजस्व का मात्र एक दशमांस था, अंग्रेज़ों ने उन्हें जगन्नाथ मंदिर की देखरेख का दायित्व दिया तथा उनका निवास पुरी में निश्चित कर दिया। इस अनैतिक व्यवस्था से ओडिशा में दमनकारी विदेशी शासन के एक ऐसे युग का प्रारंभ हुआ जिसने 1817 में एक गंभीर सशस्त्र संग्राम का मार्ग प्रशस्त किया।

खुर्दा को अपने अधीन करने के तुरंत बाद अंग्रेज़ों ने राजस्व निवृत ज़मीन पर कर लगाने की नीति अपनाई। इसमें राज्य के पूर्व सैनिक वर्ग, जिन्हें 'पाइक' के नाम से जाना जाता था, उनका जीवन बुरी तरह से प्रभावित हुआ। इस नीति की भयावहता राजस्व की माँग में अनुचित वृद्धि और इस संग्रह के दमनकारी तरीकों से और बढ़ गई थी। इस कार्यवाही के फलस्वरूप 1805 और 1817 के बीच में खुर्दा से बड़े पैमाने पर लोग ज़मीन छोड़कर चले गए। फिर भी अंग्रेज़ों ने अस्थायी बंदोबस्त के तहत राजस्व भुगतान की नीति को चालू रखा जिसमें ज़मीन की उपजाऊ क्षमता तथा *रैयतों* की भुगतान की क्षमता की अनदेखी करते हुए हर वर्ष राजस्व की माँगों में वृद्धि की गई। यहाँ तक कि प्राकृतिक आपदाओं के समय में भी कोई उदारता नहीं दिखाई गई जबकि ओडिशा में ऐसी आपदाएँ अकसर आती रहती थीं। बकायादारों की ज़मीन को षड्यंत्रकारी राजस्व अधिकारियों या फिर बंगाल के सट्टेबाज़ों को बेच दिया गया।

खुर्दा के विस्थापित राजा का वंशानुगत सेनानायक, जगबंधु विद्याधर महापात्र भ्रमरवर राय, जिन्हें लोग बक्सी जगबंधु के नाम से जानते थे, वह ऐसे बेदख़ल हुए ज़मींदारों में से एक थे। व्यावहारिक रूप से वे एक भिखारी बन गए थे। अपने तथा अपने जैसे ज़मीन से बेदख़ल हुए लोगों की ओर से संघर्ष करने का निश्चय करने से पूर्व प्रायः दो साल तक उन्होंने खुर्दा के लोगों के स्वैछिक दान से अपना गुज़ारा किया। बीते हुए वर्ष के साथ-साथ जो तकलीफ़ें इन शिकायतों के साथ जुड़ गई थीं, वे थीं— (क) अंग्रेज़ों द्वारा इस क्षेत्र में चाँदी के सिक्कों का प्रचलन, (ख) इस नई मुद्रा में राजस्व के भुगतान पर ज़ोर देना, (ग) खाद्य-सामग्री की कीमतों में अभूतपूर्व वृद्धि तथा नमक की आपूर्ति में कमी जो कि कंपनी के एकाधिकार नीति के चलते लगभग दुर्लभ हो गया था और जिसके कारण ओडिशा के पारंपरिक रूप से नमक बनाने वाले इस काम से वंचित हो गए थे, और

Reprint 2024-25

(घ) स्थानीय ज़मींदारियों की कलकत्ता में नीलामी जिसके कारण ओडिशा में बंगाल के अनुपस्थित ज़मींदारों का आगमन हुआ। इसके अतिरिक्त असंवेदनशील तथा भ्रष्ट पुलिस प्रशासनिक व्यवस्था ने भी स्थिति को और दुष्कर बना दिया जिसके चलते होने वाले सशस्त्र संग्राम ने और भयावह आकार धारण कर लिया।

29 मार्च, 1817 को इस संग्राम की शुरुआत तब हो गई जब पाइकों ने बानपुर में स्थित पुलिस चौकी और अन्य सरकारी संस्थानों पर हमला कर दिया और सौ से अधिक लोगों की हत्या करने के साथ-साथ सरकारी खजाने में से एक बड़ी रकम लेकर चले गए। शीघ्र ही खुर्दा को केंद्र करते हुए इस घटना की लहर अलग-अलग दिशाओं में फैल गई।

उत्साह से भरपूर ज़मींदार और *रैयत*, पाइकों के साथ मिल गए। जो उनके साथ नहीं मिले उन्हें प्रताड़ित किया गया। एक ''कर मत दो'' अभियान भी शुरू किया गया। अंग्रेज़ों ने पाइकों को उनके जमे हुए स्थान से हटाने की कोशिश की, परंतु असफल रहे। 14 अप्रैल 1817 को बक्सी जगबंधु ने 5 से 10 हज़ार पाइकों और कंध जनजाति के योद्धाओं की अगवाही कर पुरी को कब्ज़े में ले लिया और मुकंद देव (द्वितीय) को उनकी झिझक के बावजूद राजा घोषित कर दिया। जगन्नाथ मंदिर के पुजारियों ने भी पाइकों को अपना भरपूर समर्थन प्रदान किया।

स्थिति को हाथ से निकलते हुए देख अंग्रेज़ों ने ''मार्शल लॉ'' लागू कर दिया। जल्द ही घोषित राजा पकड़े गए और उन्हें उनके पुत्र सहित कटक में कारावास दे दिया गया। बक्सी ने, अपने करीबी सहयोगी, कृष्ण चंद्र भ्रमरवर राय के साथ मिलकर कटक और खुर्दा के बीच यातायात के सारे माध्यम को काटने का प्रयास किया। इसके साथ-साथ संघर्ष ओडिशा के दक्षिण और उत्तर-पश्चिमी हिस्सों में फैल गया। परिणामस्वरूप अंग्रेज़ों ने मेजर-जनरल मार्टिनडल को पाइकों के चंगुल से पूरे क्षेत्र को मुक्त कराने के लिए भेजा तथा बक्सी जगबंधु और उनके साथियों को पकड़वाने के लिए पुरस्कार की भी घोषणा की। इस प्रकार जो सामरिक कार्रवाई चली उसमें सैकड़ों पाइक मारे गए, कई घने जंगलों में चले गए और अन्य सामूहिक क्षमा योजना के तहत अपने घरों में लौट गए। इस तरह से अंग्रेज़ों ने मई 1817 तक खुर्दा के संग्राम को लगभग काबू में कर लिया।

परंतु खुर्दा के बाहरी क्षेत्रें में बक्सी जगबंधु ने कुजंग के राजा जैसे सहयोगी की मदद से और पाइकों के उनके प्रति अटूट निष्ठा के कारण इस संघर्ष को मई 1825 तक ज़ारी रखा, जब उन्होंने अंग्रेज़ों के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। इसके उपरांत अंग्रेज़ों ने खुर्दा के लोगों के प्रति अपनी ओर से 'दयालु, अनुग्रहित और सहनशीलता' की नीति अपनाई। पुलिस और न्यायिक व्यवस्था में आवश्यक सुधार किया। नमक की कीमतों में कमी की गई। जिन राजस्व अधिकारियों को भ्रष्ट पाया गया उन्हें कार्य से निष्कासित कर दिया और बेदख़ल ज़मींदारों को अपनी ज़मीन लौटा दी गई। दिवंगत खुर्दा के राजा के पुत्र रामचंद्र देव (तृतीय) को स्वतंत्र कर पुरी जाने दिया गया और 26,000 रुपये के अनुदान के साथ उन्हें जगन्नाथ मंदिर की देखरेख का दायित्व भी सौंपा गया।

संक्षेप में, यह ओडिशा में अंग्रेज़ों के विरुद्ध पहला लोकप्रिय सशस्त संघर्ष था जिसका उस क्षेत्र में ब्रिटिश शासन पर दूरगामी प्रभाव पड़ा। अतः इसे मात्र 'पाइक विद्रोह' कहना, इसे कमतर कर आँकना होगा।

not to be republished © NCERT

फिर से याद करें

1. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की अंग्रेज़ों से ऐसी क्या माँग थी जिसे अंग्रेज़ों ने ठुकरा दिया?
2. ईसाई धर्म अपनाने वालों के हितों की रक्षा के लिए अंग्रेज़ों ने क्या किया?

Reprint 2024-25

3. सिपाहियों को नए कारतूसों पर क्यों ऐतराज़ था?

4. अंतिम मुग़ल बादशाह ने अपने आख़िरी साल किस तरह बिताए?

आइए कल्पना करें

कल्पना कीजिए कि आप विद्रोह के दौरान अवध में तैनात ब्रिटिश अधिकारी हैं। विद्रोहियों से लड़ाई की अपनी योजनाओं को गुप्त रखने के लिए आप क्या करेंगे?

आइए विचार करें

5. मई 1857 से पहले भारत में अपनी स्थिति को लेकर अंग्रेज़ शासकों के आत्मविश्वास के क्या कारण थे?

6. बहादुर शाह ज़फ़र द्वारा विद्रोहियों को समर्थन दे देने से जनता और राज-परिवारों पर क्या असर पड़ा?

7. अवध के बागी भूस्वामियों से समर्पण करवाने के लिए अंग्रेज़ों ने क्या किया?

8. 1857 की बग़ावत के फलस्वरूप अंग्रेज़ों ने अपनी नीतियाँ किस तरह बदलीं?

आइए करके देखें

9. पता लगाएँ कि सन सत्तावन की लड़ाई के बारे में आपके इलाके या आपके परिवार के लोगों को किस तरह की कहानियाँ और गीत याद हैं? इस महान विद्रोह से संबंधित कौन-सी यादें अभी लोगों को उत्तेजित करती हैं?

10. झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के बारे में और पता लगाएँ। आप उन्हें अपने समय की एक विलक्षण महिला क्यों मानते हैं?

***चित्र 17** - लखनऊ रेज़िडेंसी के खंडहर।*
जून 1857 में विद्रोही टुकड़ियों ने रेज़िडेंसी को कब्ज़े में ले लिया। बहुत सारी अंग्रेज़ औरतों, मर्दों और बच्चों ने रेज़िडेंसी की इमारतों में पनाह ली हुई थी। विद्रोहियों ने इस पूरे परिसर को घेरकर उन पर गोलों से हमला किया। इसी तरह के एक गोले से अवध के चीफ़ कमिश्नर हेनरी लॉरेंस की भी मौत हो गई थी। हेनरी लॉरेंस जिस कमरे में मरे वह इस चित्र में दिखाई दे रहा है। ग़ौर से देखें कि इमारतों पर बीते दौर के निशान किस तरह बचे रह जाते हैं।

© NCERT not to be republished

Reprint 2024-25